अंतर्द्वंद: आस्था और चाहत के बीच

देबाशीष
हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल
विश्वविद्यालय(केंद्रीय विश्वविद्यालय)
devashish.Kumar9876@gmail.com
© देबाशीष, 2025. All rights reserved.

मई-जून की चिलचिलाती गर्मी में दिल्ली की तपन कुछ ऐसी होती है कि कोई मजबूर या मजदूर ही नंगे पाँव जमीन पर कदम रखने की हिम्मत करता है। जमीन से ऐसी तपिश और रोष उठता है कि उसे सहने के लिए खास शक्ति चाहिए। इसी गर्मी में एक धनी इलाके में शान्तो देवी अपने वातानुकूलित कमरे में बैठी खिड़की से बालकनी के तपते फर्श को देख रही थीं। नजरें उस फर्श पर टिकी थीं, पर मन बचपन की यादों में खो गया था—उस जगह में, जहाँ उनका जन्म हुआ था। दिल्ली की इस गर्मी की तुलना में वहाँ की गर्मी शायद कुछ अलग थी। तभी एक पानी की बूँद बालकनी के तपते फर्श पर गिरी और पलभर में भाप बनकर उड़ गई। पहली बूँद का ऐसा तिरस्कार देख मेघराज क्रोधित हो उठे। वे जोर से गरजे और पूरे वेग से बरस पड़े। अब तपते फर्श की एक न चली। बारिश की बूँदें सतह पर टकराने लगीं—टड-टड-टड—मानो आग और जल का भीषण युद्ध छिड़ गया हो। इस युद्ध से पहले तपती हवा निकली, फिर मिट्टी की सौंधी खुशबू फैली, और अंत में वह ठंडी हवा चली, जो जून की पहली बारिश अपने साथ लाती है और चौमासे का आगाज करती है।

शान्तो देवी के चेहरे पर ठंडी हवा का स्पर्श हुआ तो उन्होंने अपनी छड़ी उठाई और बालकनी की ओर बढ़ीं। हाथ बाहर निकालकर वे बूँदों के साथ खेलने लगीं। शायद बचपन की कोई याद उनके मन में जाग उठी थी। तभी पीछे से एक हाथ उनके कंधे पर आया। यह उनकी बहू का हाथ था। बहू उन्हें अंदर ले गई, तौलिए से हाथ पोंछे और कहा, "आपको कितनी बार मना किया है, बारिश के पानी से दूर रहा करें, तबीयत बिगड़ जाएगी।" शान्तो देवी ने छोटी-सी मुस्कान देकर बहू की बात का जवाब दिया।

शान्तो देवी साठ-पैंसठ वर्ष की कम बोलने वाली महिला हैं। दिखने में स्वस्थ लगती हैं, पर उच्च रक्तचाप की मरीज हैं। आँखें कमजोर हो चली हैं, इसलिए चश्मा लगाती हैं। घुटनों के दर्द के कारण छड़ी का सहारा लेती हैं। दाहिनी कलाई पर चोट का एक छोटा-सा निशान है। उनका एक बेटा है, जो दिल्ली के नामी वकीलों में से एक है। बेटा अपनी माँ के प्रति बेहद स्नेह और आज्ञाकारी है। उनकी बहू भी जिम्मेदार और देखभाल करने वाली है। तीन साल पहले उनकी पोती का जन्म हुआ था, मानो यीशु ने उनके बुढ़ापे को खुशियों से भर दिया हो।

हर दिन वह अपनी बहू के साथ सुबह की सैर पर जाती हैं। बहू के मना करने पर भी घर का कुछ-न-कुछ काम करतीं और शाम को चर्च जातीं—ईसा मसीह को धन्यवाद देने, प्रार्थना करने। शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता जब वह चर्च न जाएँ। यीशु पर उनकी गहरी आस्था थी, और क्यों न हो, उनके भगवान ने उन्हें बहुत कुछ दिया था। शान्तो देवी एक संपन्न वृद्धा हैं। देखने-सुनने में उनका बुढ़ापा बेहतरीन लगता है, पर उनके चेहरे पर एक खामोशी रहती है—न जाने कितने राज, कितनी अधूरी चाहतें उसमें छिपी हैं।

चर्च से लौटने के बाद शान्तो देवी हर दिन अपने कमरे में रखे पुराने झोले से एक चाँदी का सिक्का निकालतीं। प्रेम और कोमलता से उसे कपड़े से साफ करतीं और वापस रख देतीं। यह उनके लिए कोई साधारण सिक्का नहीं था, क्योंकि उस पर माँ गंगा की तस्वीर बनी थी। उनके दिल के किसी कोने में एक पुरानी चाहत दबी थी—जिसे वह पूरा करना भी चाहती थीं और नहीं भी। वह थी गंगोत्री के दर्शन की चाहत। न सिर्फ एक यात्री की तरह, बल्कि एक भक्त की तरह वहाँ जाना, माँ गंगा से मिलना, उन्हें देखना चाहती थीं। लेकिन मुश्किल यह थी कि वह ऐसा कैसे करें? बेटा, बहू, और बहू के घरवाले क्या सोचेंगे? इससे भी बड़ी परेशानी उनके भोले दिल की थी—कहीं यीशु, जिसने उन्हें इतनी खुशियाँ दीं, नाराज न हो जाएँ। कहीं वह उनकी नजरों में धोखेबाज या पाप की भागीदार न बन जाएँ।

यह गंगोत्री जाने की चाहत सिर्फ बुढ़ापे की नहीं थी। यह उनके बचपन की खूबसूरत यादों से जुड़ी थी, जब वह अपने बाबा के साथ गंगा तट पर बसे एक गाँव में रहती थीं। उनकी माँ उन्हें जन्म देते वक्त चल बसी थीं, पर बाबा ने कभी माँ की कमी महसूस नहीं होने दी। बाबा गरीब थे। गाँव में उनकी अपनी जमीन नहीं थी। घर के नाम पर घास-फूस की एक छत थी, जिसके नीचे वे नन्ही शान्तो का लालन-पालन करते थे। बारिश में वे सोती हुई शान्तो के ऊपर खड़े हो जाते, ताकि छत से पानी उस पर न टपके। बाबा गाँव में पूजा-कथा और भगवान के कार्यों में ढोल बजाकर थोड़ी-बहुत कमाई कर लेते। वह ढोल ही था, जिसके कारण गाँववाले उनकी इज्जत करते थे। ढोल को भगवान का प्रतीक माना जाता था। जब तक वह बाबा के गले में रहता, उन्हें भगवान का दूत समझा जाता। लेकिन ढोल के बिना वे नीच जाति के एक साधारण आदमी थे, जिनके छूने मात्र से लोग अपवित्र हो जाते।

`बाबा अपनी और शान्तो की गुजर-बसर के लिए गाँववालों के खेतों में काम करते। सुबह-सुबह फसलों को देखने, नाले का पानी रोकने के लिए खेतों में जाना पड़ता। वे सुबह जल्दी उठते, पर सोई हुई शान्तो को अकेले छत के नीचे नहीं छोड़ते, न ही उसकी नींद तोड़ते। प्यार से उसे गोद में उठाकर अपनी छाती से लगाते और चल पड़ते। वही तो थी, जिसके लिए वे जीते थे, खुश रहते थे। शान्तो के लिए सुबह का सबसे प्यारा पल यही था। खेतों में ठंडी हवा के स्पर्श से उसकी नींद टूटती। बाबा की चौड़ी

छाती से चिपकी हुई खुद को पाकर उसे अपार खुशी मिलती। नींद खुलने के बाद भी वह देर तक सोने का नाटक करती, ताकि बाबा उसे गोद से न उतारें। उनकी गोद में उसे जन्नत का एहसास होता था।

शान्तो की माँ उसे जन्म देते ही मर गई थीं, इसलिए उसे "माँ" शब्द का मतलब नहीं पता था। गाँव के बच्चे रोते वक्त "माँ-माँ" चिल्लाते, तो उसे हैरानी होती। वह तो रोते वक्त "बाबा-बाबा" कहती थी। एक दिन दोपहर को गाँव से घूमकर लौटी शान्तो ने बाबा से पूछ ही लिया, "माँ का क्या मतलब होता है, बाबा? मेरे दोस्तों की माँ होती है, मेरी माँ कहाँ है?" सवाल सुनकर बाबा एक पल को खामोश हो गए, मानो वे सालों से इस सवाल का इंतजार कर रहे हों। लेकिन शान्तो अभी छोटी थी। वे उसे नहीं बता सकते थे कि उसकी माँ इस दुनिया में नहीं है। काम खत्म कर बाबा ने उसकी हथेली चूमी, उसे गोद में उठाया और गंगा के किनारे ले गए। वहाँ खड़े होकर पहले उन्होंने गंगा को हाथ जोड़कर नमस्कार किया, फिर गंगाजल से शान्तो का चेहरा धोया और कहा, "माँ वह होती है, जिसने हमें जन्म दिया, जो हमें जीने में मदद करती है, हमारी रक्षा करती है। यह गंगा नदी ही हमारी माँ है। इसी ने हमें जन्म दिया, खाना दिया, पानी दिया। इसी के कारण हमारा गाँव हरा-भरा है, फसलें लहलहाती हैं, हम जीवित हैं। यही हमारी माँ है, तेरी भी।"

***

शान्तो के बालमन में कई सवाल उठे—एक नदी माँ कैसे हो सकती है? खेतों से इसका क्या संबंध है? पर बाबा की बताई "माँ" की परिभाषा से वह संतुष्ट हो गई। उसे लगा कि वह इसी नदी में बहकर अपने बाबा तक आई होगी। उस दिन से गंगा उसकी माँ बन गई। हर दिन तट पर जाकर गंगा से अपने सुख-दुख बाँटना उसकी दिनचर्या बन गया। गंगा के लिए उसके दिल में खास जगह बन गई थी।

शान्तो के जीवन में बाबा के ढोल का भी बड़ा महत्व था। ढोल की थाप पर नाचती वह, देवी-देवताओं की डोली और पूजा-पाठ का दृश्य उसे मनमोहक लगता। हर गंगा दशहरा पर गाँव में गंगा की बड़ी पूजा होती। जयकारे गूँजते—हर हर गंगे, हर हर गंगे। कुछ लोग उस दिन गंगोत्री की यात्रा पर जाते। शान्तो तब छह-सात साल की रही होगी, जब उसने पहली बार "गंगोत्री" शब्द सुना। भागती-भागती वह बाबा के पास पहुँची और बोली, "बाबा, गंतोतरी क्या होता है?" बाबा को पहले समझ नहीं आया। फिर उसने कहा, "मेरी दोस्त का बाबा आज गंतोतरी गया। वह क्या होता है?" बाबा को उसकी तुतलाती आवाज पर हँसी आ गई। मुस्कुराते हुए उन्होंने उसकी कलाई चूमी, उसे गोद में लिया और बोले, "गंतोतरी नहीं, चकोरी, गंगोत्री होता है—ग-न-गो-त्री।" शान्तो फिर भी सही से न बोल पाई। बाबा ने ज्यादा जोर नहीं दिया और समझाया, "हमारी गंगा माँ का मंदिर है वहाँ गंगोत्री गाँव में।" शान्तो तुरंत बोली, "मेरी माँ का मंदिर, बाबा? सच में?" बाबा ने कहा, "हाँ, तेरी माँ का मंदिर। गंगोत्री से ही गंगा

निकलती है। आज गंगा दशहरा के दिन माँ एक साधु की तपस्या से खुश होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर आई थीं, ताकि हम सब जीवित रहें। इसलिए लोग गंगोत्री जाकर माँ को धन्यवाद बोलते हैं।"

साधु की कहानी शान्तो को समझ न आई, पर गंगोत्री जाकर धन्यवाद बोलने की बात उसे अच्छी लगी। उसने मन में गंगोत्री का एक सुंदर दृश्य बना लिया—मंदिर के अंदर कोई जीवित माता बैठी होगी। वह कैसी दिखती होगी? मंदिर कैसा होगा? उसने बाबा से पूछा, "हम कब जाएँगे वहाँ माँ को धन्यवाद बोलने?" बाबा के लिए दो वक्त की रोटी जुटाना मुश्किल था, गंगोत्री की यात्रा तो दूर की बात थी। बेटी के सवाल पर उन्होंने भारी मन से कहा, "जब माता का बुलावा होगा।" माँ के बिना बेटी और गरीबी ने शान्तो को समय से पहले समझदार बना दिया था। बाबा की बातों का छिपा अर्थ वह समझ गई। अगले ही पल उनकी गोद से उतरकर नंगे पाँव भागती हुई वह नदी के तट पर पहुँची। छोटे-छोटे हाथ जोड़कर बोली, "माँ, एक दिन मैं भी आऊँगी तेरे पास गंतोतरी, तुझे धन्यवाद बोलने। तू मेरा इंतजार करना। बाबा का ढोल लेकर आऊँगी।" मानो पूरी श्रद्धा से उसने संकल्प ले लिया हो।

***

गाँव में एक मंदिर था, जहाँ गाँव के देवता की डोली रखी जाती। मंदिर को लेकर उसके मन में कई सवाल थे—अंदर कौन बैठा है? मंदिर अंदर से कैसा दिखता होगा? यह भी समझ न आता कि बाबा उसे मंदिर के पास जाने से क्यों मना करते, जबकि बाकी बच्चे अंदर जाते थे। बाबा को भी उसने मंदिर के बाहर ढोल बजाते देखा था। पर बचपन की जिज्ञासा के दायरे नहीं होते। एक शाम, जब मंदिर के आसपास कोई न था, वह मंदिर के दरवाजे तक पहुँच गई। अंदर कदम रखा। भगवान की मूर्ति देखकर वह खुश हुई। पहली बार गर्भगृह को देख वह उत्साह से नाचने लगी। तभी मंदिर के पुरोहित ने उसे देख लिया। गुस्से में पहले तो उसके बाल खींचकर बाहर लाया, फिर चिमटे से जलता अंगारा पकड़कर उसकी हथेली जला दी। पूरा मंदिर धोया गया। एक नन्ही लड़की के प्रवेश से भगवान अशुद्ध हो गए थे।

बेटी की दर्दभरी चीखें सुन बाबा को गुस्सा आ गया, पर गाँव और उसकी पुरानी रीतों के आगे उनकी एक न चली। जली हुई कलाई देख बाबा अपनी गरीबी और लाचारी में फूट-फूटकर रो पड़े। शान्तो ने पहली बार अपने बाबा को रोते देखा। आखिरकार, अपने रोष को जाहिर करने के लिए बाबा ने गाँव के सामने ढोल जला दिया। अब ढोल नहीं, तो किसी देवता की पूजा भी नहीं। गाँव के बीचोंबीच उन्होंने धर्म परिवर्तन का ऐलान कर दिया। जिस धर्म में मान नहीं, सम्मान नहीं, बेटी की रक्षा नहीं, उसे क्यों अपनाएँ? उस भगवान को क्यों मानें, जो एक बच्ची के स्पर्श से अशुद्ध हो जाए? बाबा ने गाँव छोड़ने का भी फैसला कर लिया।

अगले दिन बाबा ने शान्तो को गोद में उठाया और चल पड़े। आज पहली बार उनकी गोद में शान्तो को खुशी नहीं मिल रही थी। बाबा के कंधे पर सिर टिकाए वह अपने घर और गाँव को दूर होता देख रही थी। गंगा तट पर पहुँचकर आज बाबा ने माँ का अभिवादन भी नहीं किया। ऐसा क्यों किया होगा? यह सवाल उसके मन में अनुत्तरित रह गया। बाबा आगे बढ़ते गए और शान्तो गंगा को भी खुद से दूर होता देखती रही। उसके नन्हे मन में कुछ बातें, कुछ यादें बस गई थीं, जो शायद कभी पूरी न हों।

किसी परिचित के सुझाव पर बाबा उसे लेकर एक नए कस्बे में आ गए। वहाँ एक ईसाई धर्म प्रचारक के पास जाकर उन्होंने धर्म परिवर्तन कर लिया। नए धर्म में थोड़ा मान-सम्मान और गुजर-बसर का पैसा मिला। पर शान्तो का आगे का जीवन दुखमय रहा। गरीबी और दुख में उसका बचपन कब बीत गया, पता ही न चला। बाबा बीमार रहने लगे। चाहकर भी बेटी के लिए कुछ न कर सके। 22 साल की उम्र में उसकी शादी हुई। कई साल बाद उसने एक बेटे को जन्म दिया। कुछ सालों बाद पति उसे छोड़कर भाग गया। शायद उसकी किस्मत में अभाग्य ही लिखा था। फिर बाबा का भी देहांत हो गया। लेकिन ईसाई कार्यकर्ताओं ने उसके बेटे की शिक्षा का जिम्मा उठाया और उसे एक बेहतरीन बोर्डिंग स्कूल में पढ़ाया।

आज शान्तो देवी अपने और बेटे के परिश्रम व अपने त्याग से सुखी जीवन जी रही हैं। उनके लिए बेटे की खुशियाँ ही सब कुछ हैं। बेटे ने बिना कहे उनकी हर छोटी-बड़ी इच्छा पूरी की। पुरानी दर्दनाक यादों को भुलाने के लिए उनके पास सब कुछ था। उनकी प्रार्थना में कभी अपने लिए कुछ न होता, न किसी से शिकायत, न गिला। जो है, उसके लिए वे यीशु को दिल से धन्यवाद देती हैं। पर बचपन का वह संकल्प आज भी उन्हें याद है। मानो उनके भीतर की नन्ही शान्तो पूछती हो, "माँ के पास कब जाएँगे?" यह उनकी एकमात्र इच्छा है, जिसे वह पूरा करना भी चाहती हैं और नहीं भी। बूढ़ी शान्तो इस इच्छा को दबाए रखती हैं, कहीं वे पाप की भागीदार न बन जाएँ, कहीं यीशु की नजरों में धोखेबाज न मान ली जाएँ। एक वक्त था, जब उनके पास गंगोत्री जाने के पैसे न थे। आज सब कुछ है, पर वे खुद नहीं जाना चाहतीं। उन्हें पता है, बेटे से जिक्र भर कर दें, तो वह बिना सवाल उनकी इच्छा पूरी कर देगा। पर नहीं, यह उनके भीतर का द्वंद्व है—नन्ही शान्तो और बूढ़ी शान्तो के बीच का।

पता नहीं इस द्वंद्व में किसकी जीत होगी। पता नहीं इसका परिणाम कब आएगा। या शायद परिणाम आने से पहले ही शान्तो देवी इस दुनिया को अलविदा कह दें।